**eISSN 2581-8996**
[Date]
**THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)**
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

# भारतीय संविधान (विविधता में एकता)

**[1]डॉ0 अनुपमा श्रीवास्तव**

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ज0ला0ने0मेमो0 परा0 महाविद्यालय, बाराबंकी

Received: 15 June 2018, Accepted: 15 July 2018, Published on line: 15 Sep 2018

## Abstract

दुनिया में किसी भी देश का संविधान, वह मूलभूत विधान होता है जो उस देश की सम्पूर्ण व्यवस्था को दर्शाता है। वर्तमान में भारतीय संविधान में 465 अनुच्छेद, 25 भागों और 12 अनुसूचियों में लिखा गया है। भारतीय संविधान में दुनियाभर के प्रमुख संविधानों से उचित और उपयोगी प्रावधान लिये गये है और देश की उपयुक्ता और आवश्यकता के लिहाज से उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन और संशोधन किया गया है। संविधान भारत सरकार के अधिनियम 1935 पर आधारित हैं। भारतीय संविधान न तो कठोर है और न ही लचीला। इसके मूल ढांचे में छेड़छाड़ किये बिना समयानुकूल आवश्यकता के अनुसार समय–समय पर संशोधन किये जाने का प्रावधान है। संविधान के मूल ढांचे के अंगों में धर्मनिरपेक्षता संघवाद, संसदीय स्वरूप, एकल नागरिकता, एकीकृत तथा स्वतंत्र न्यायपालिका, राज्य के नीति निर्देशक तत्व जो संविधान के अनुच्छेद 36 से 50 में अंकित है मौलिक अधिकार, सार्वभौम वयस्क मताधिकार, शक्तियों का पृथ्क्कीकरण आदि–आदि बिन्दु आते है। संविधान में वर्णित शब्द 'धर्मनिरपेक्षता भारत' में मौजूद सभी धर्मो को देश में समान संरक्षण देने और शासकीय कार्य में सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार व समान अवसर उपलब्ध कराने के रूप में परिभाषित है।

**शब्द संक्षेप–** भारतीय संविधान मूल ढांचा, संविधान संशोधन, धर्म निरपेक्षता, अनुसूची, अनुच्छेद, गणतन्त्र, एकल नागरिकता।

## Introduction

संविधान किसी भी देश का वह मूलभूत विधि विधान हैं, जो सरकार के विभिन्न अंगों की रूपरेखा और मुख्य कार्य का निर्धारण करता है। वर्तमान में भारतीय संविधान 465 अनुच्छेद, 25 भागों और 12 अनुसूचियों में लिखा गया है। भारतीय संविधान में दुनियाभर के प्रमुख संविधानों से उचित और उपयोगी प्रावधान लिए गये है और देश की उपयुक्ता और आवश्यकताओं के लिहाज से उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन और संशोधन किया गया है। संविधान भारत सरकार के अधिनियम 1935 पर आधारित है। भारतीय संविधान न तो कठोर है और न ही लचीला। इसके मूल ढांचे में बिना छेड़छाड़ किये समयानुकूल आवश्यकता के अनुसार समय–समय पर संशोधन किये जाने का प्रावधान है। संविधान के मूल ढांचे के अंगों में धर्मनिरपेक्षता, संघवाद, संसदीय स्वरूप, एकल नागरिकता, एकीकृत तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका, राज्य के नीति निर्देशक तत्व जो संविधान के अनुच्छेद 36 से 50 में अंकित हैं, मौलिक अधिकार, सार्वभौम वयस्क मताधिकार, शक्तियों का

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

पृथ्क्कीकरण आदि बिन्दु आते है। संविधान में वर्णित शब्द 'धर्मनिरपेक्षता' भारत में मौजूद सभी धर्मो को देश में समान संरक्षण देने और शासकीय कार्य में सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार व समान अवसर उपलब्ध कराने के रूप में परिभाषित है। संघवाद भारत के संविधान में संघ केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच सत्ता के बटवारे का प्रावधान है। संघवाद की अन्य विशेषताओं जैसे संविधान की कठोरता, लिखित संविधान, दो सदनों वाली विधायिका, स्वतन्त्र न्यायपालिका और संविधान के वर्चस्व को भी पूरा करता है। इसलिये भारत एकात्मक पूर्वाग्रह वाला एक संघीय राष्ट्र है। भारत में सरकार का स्वरूप संसदीय गणतंत्र है। भारत में दो सदनों–लोकसभा और राज्यसभा वाली विधायिका है। सरकार के संसदीय स्वरूप में विधायी और कार्यकारिणी अंगों की शक्तियों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है। भारत में सरकार का मुखिया प्रधानमंत्री होता हैं उसकी स्थिति मंत्रिमण्डल में सभी सामान हैं पर वह (प्रधानमंत्री) समान में सर्व प्रमुख है।

भारत का संविधान देश के प्रत्येक व्यक्ति को एकल नागरिकता प्रदान करता है। भारत में कोई भी राज्य किसी अन्य राज्य के वासी होने के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता। इसके अलावा, भारत में किसी भी व्यक्ति को देश के किसी भी हिस्से में जाने और कुछ स्थानों को छोड़कर भारत की सीमा के भीतर कहीं भी रहने का अधिकार है। हमारा संविधान एकीकृत और स्वतंत्र न्यायपालिका प्रणाली को प्राविधित करता है। सुप्रीम कोर्ट भारत का सर्वोच्च न्यायालय है। इसे भारत के सभी न्यायालयों पर प्रशासनिक अधिकार प्राप्त है। संविधान सुप्रीम कोर्ट को असीमित न्यायिक और संविधान के संरक्षण का अधिकार देता है। इसके बाद उच्च न्यायालय, जिला अदालत और निचली अदालतों का स्थान हैं। किसी भी प्रकार के प्रभाव से न्यायपालिका की रक्षा के लिए संविधान में कुछ प्रावधान बनाए गये हैं, जैसे कि जजों के लिए कार्यकाल की सुरक्षा और सेवा की निर्धारित शर्ते आदि। संविधान के भाग IV (अनुच्छेद 36 से 50) में राज्य के नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के बारे में उल्लेख किया गया है। ये दिशा–निर्देश राज्य को कल्याणकारी राज्य का स्वरूप प्रदान करते हैं। इन्हें कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकती हैं। ये सामान्य तौर पर आजादी के संघर्ष के दौरान विकसित हुई, समाजवादी, गांधीवादी और उदारवादी विचारधारा का परिणाम है। संविधान में 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा, मौलिक कर्तव्यों को संविधान में शामिल किया गया। इस उद्देश्य के लिए एक नया हिस्सा भाग IV ए बनाया गया और अनुच्छेद 51ए के तहत दस कर्तव्य शामिल किए गए। यह प्रावधान नागरिकों को इस बात की याद दिलाता है कि अधिकारों का उपयोग करने के दौरान उन्हें अपने कर्तव्यों का भी निर्वहन करना चाहिए। अधिकार अबाध नहीं है बल्कि उनके साथ नागरिकों के कुछ कर्तव्य भी प्राविधित किये है जो राज्य, नागरिकों से अपेक्षा करता है। भारत में 18 वर्ष से अधिक उम्र के प्रत्येक नागरिक को जाति, धर्म, वंश, लिंग, साक्षरता आदि के आधार पर बिना भेदभाव के मतदान का अधिकार प्राप्त है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार सामाजिक असमानताओं को दूर करता है और सभी नागरिकों के लिए राजनीतिक समानता के सिद्धांत को बनाए रखता है। इस प्रकार भारत का संविधान सबसे निचले स्तर या जमीनी स्तर पर लोकतंत्र, मौलिक अधिकारों और सत्ता के विकेंद्रीकरण के रूप में खड़ा है। इन शक्तियों और अधिकारों के कमजोर पड़ने की किसी भी संभावना को देखते हुए, संविधान के संरक्षक

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

के रूप में काम करने, संविधान का उल्लंघन करने वाले किसी भी कानून या कार्यकारी अधिनियम को रद्द करने और इस प्रकार संविधान की सर्वोच्चता लागू करने के लिए, सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई।

भारत के संवैधानिक इतिहास में 1973 का साल एक परिवर्तन बिन्दु के वर्ष के रूप में याद किया जाता है, जब संविधान में संशोधन के प्राविधान के अनुसार संविधान को कितना संशोधित किया जा सकता है, यह बिन्दु सुनवाई के लिये सुप्रीम कोर्ट में आया। मामला था, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय की 13 न्यायाधीशों की पीठ ने अपने संवैधानिक रूख में संशोधन करते हुए कहा कि ''संविधान संशोधन के अधिकार पर एकमात्र प्रतिबंध यह है कि इसके माध्यम से संविधान के मूल ढांचे को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।'' अपने तमाम अंतविरोधों के बावजूद यह सिद्धांत अभी भी कायम है और जल्दबाजी में किए जाने वाले संशोधनों पर अंकुश के रूप में कार्य कर रहा है। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य के मामले में 68 दिन, (31 अक्टूबर 1972 से शुरू होकर 23 मार्च 1973) तक सुनवाई हुई। 24 अप्रैल 1973 को चीफ जस्टिस सीकरी और उच्चतम न्यायालय के 12 अन्य न्यायाधीशों ने न्यायिक इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय दिया। सभी प्रयास सिर्फ इस एक मुख्य सवाल के जवाब के लिए थे कि ''क्या संसद की शक्ति संविधान का असीमित संशोधन करने के लिए थी?'' दूसरे शब्दों में, ''क्या संसद संविधान के किसी भी हिस्से को रद्द, संशोधित और बदल सकती है चाहे वह सभी मौलिक अधिकार छीन लेने का ही क्यों न हो?'' अनुच्छेद 368 में, उसकों साधारण रूप से पढ़ने पर, संविधान के किसी भी भाग में संशोधन के लिए संसद की शक्ति पर कोई सीमा नहीं थी। इस अनुच्छेद में ऐसा कुछ भी नहीं था, जिससे संसद को एक नागरिक के भाषण की स्वतंत्रता या उसकी धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार छीन लेने से रोका जा सके। लेकिन अगर संविधान के मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशों को गम्भीरता के साथ संविधान सभा की गहन बहसों के आलोक में पढ़ा जाए तो यही तथ्य निकलता है कि संविधान के मूल ढांचे में संसद, सर्वोच्च होते हुए भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकती है। संविधान संशोधन में मूल ढांचा प्रभावित और परिवर्तित हो रहा है या नहीं, यह देखने का अधिकार संविधान के ही अनुसार सुप्रीम कोर्ट का है। इसीलिये राजनेता समय–समय और अपने राजनीतिक एजेंडे की पूर्ति के बाधा के रूप में कभी–कभी सुप्रीम कोर्ट को देखते हैं और उस पर अपनी भड़ास यदा–कदा निकालते है। संविधान के अस्तित्व पर सबसे पहले आशंकायुक्त चर्चा 1969 में हुई, जब इन्दिरा गांधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के विशेषाधिकार और प्रिवीपर्स को खत्म करने का प्रगतिशील कदम उठाया। उस समय इन्दिरा गांधी के साथ साम्यवादी दल थे और दक्षिणपंथी, वामपंथी विचारधारा के बीच एक स्पष्ट टकराव दिखा। तब परंपरागत सोच के लोगों को लगा कि संविधान की मूल धारणा ही बदली जाएगी। उसी के बाद ही महत्वपूर्ण फैसला आया। दूसरी बार संविधान पर खतरे की आशंका 1975 में महसूस की गयी, जब देश में 26 जून 1975 को आपातकाल की घोषणा हुई थी। तब के अखबारों की कटिंग नेट पर है। पढ़िये तो लगेगा कि देश के संविधान में व्यापक परिवर्तन होने वाला है। पांच साल पर होने वाला आम चुनाव का समय टला, अभिव्यक्ति पर पहरे और मीडिया पर सेंसर लगा, डीआईआर, मीसा जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आघात पहुंचाने वाले प्राविधान लागू हुए, सभी विरोधी दलों के

**eISSN 2581-8996**
[Date]
**THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)**
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

नेता, जो सरकार के विरोध में थे, को निरूद्ध कर दिया गया, और देश में भय का वातावरण बना। आपातकाल की घोषणा के समय सभी संवैधानिक मान्यताएं और नियम कायदे ताख पर रख दिये गये। उस दौरान संसद में बोलते हुए सीपीएम के नेता एके गोपालन ने इन्दिरा गांधी के इस कदम को संविधान की हत्या बताया था। गोपालन भूमिगत हो गए थे, पर जब संसद का अधिवेशन हुआ, तो वे उसी में प्रगट हुए। पर संविधान का यह हनन देश की जनता को रास नहीं आया और उसने आपातकाल में हुई प्रशासनिक ज्यादतियों के कारण, कभी की बेहद लोकप्रिय रही इंदिरा सरकार द्वारा संविधान के साथ की गयी छेड़छाड़ को खारिज कर दिया।

उसके बाद संविधान के साथ क्रूर मजाक 1992 में 6 दिसम्बर को हुआ जब सुप्रीम कोर्ट में लिखित हलफनामा दायर करने के बाद भी यूपी सरकार ने अयोध्या स्थित विवादित ढांचे को ढहाने से रोकने के लिये कोई प्रयास करने के बजाए अपनी मूक सहमति दे दी और दुनियाभर में संविधान की मूल धारणा सेकुलरिज्म का मजाक बना। किसी निर्वाचित सरकार द्वारा सत्ता में रहते और सवौच्च अदालत को लिखित रूप से आश्वस्त करके संविधान की ऐसी निर्लज्ज अवहेलना करने का उल्लेख दुनिया के संवैधानिक इतिहास में आज तक नहीं मिलता है। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने अदालत की अवमानना के लिये तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को दंडित भी किया, पर वह दंड वास्तविक कम और प्रतीकात्मक अधिक था। 2014 के बाद जब से एनडीए सरकार आयी है तब से कुछ ऐसी घटनाएं और ऐसे बयान आये है, जिनसे साफ तौर पर संविधान के प्रति अवज्ञा का भाव झलकता है। कभी कोई जनप्रतिनिधि संविधान की मूल आत्मा धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के बजाय एक धर्मविशेष का राष्ट्र (थियोक्रैटिक राज्य) बनाने की बात करता है, तो कोई संसदीय प्रणाली के बजाय अमेरिकी संविधान की तरह राष्ट्रपति प्रणाली की वकालत करता है, तो कभी कोई पूरे देश में एक साथ चुनाव कराने की अनिवार्य बाध्यता की वकालत कर संघीय ढांचे को चुनौती देता है, तो कोई सुप्रीम कोर्ट को धमकी देता है कि अदालतें वही फैसले दें जो सरकार लागू कर सके। यह कह कर वह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को चुनौती देता है। जबकि स्वतंत्र न्यायपालिका, संघीय स्वरूप, संसदीय प्रणाली और धर्मनिरपेक्षता संविधान के मूलाधार है, जिन्हें बदला ही नहीं जा सकता है। अगर यह कोशिश हुई, तो अराजकता होगी और उसका परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण होगा। यह अलग बात है कि इन मुद्दों पर जनता की भावनाओं को भड़का कर कुछ राजनैतिक दल और राजनेता अपनी जमीन भले ही बना लें। वर्तमान सत्तारूढ़ दल जिस वैचारिक पृष्ठभूमि से उद्भूत हुआ है, उस विचारधारा में आधुनिक धर्मनिरपेक्षता को कोई स्थान नहीं है। यह विचारधारा संविधान के गठन, उसके अंगीकृत किये जाने के समय और देश के स्वाभाविक विचारधारा, सर्वधर्म समभाव के विपरीत रही है। यह विचारधारा 1937 के सावरकर के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत की अनुगामी रही है और आज भी 'धर्म ही राष्ट्र है' के सिद्धांत के खंडित हो जाने के बाद भी उसी सिद्धांत से चिपकी हुई है। संविधान के मूल्यों का तब भी मजाक बनाया गया था, जब 26 जनवरी 1950 को यह विधान लागू किया था, और यह मजाक आज भी एक खास विचारधारा से संक्रमित लोग बना रहे हैं। उनका ऐतराज, धर्मनिरपेक्षता को लेकर अधिक है, और यह बात उन्हें शूल की तरह चुभती है। अक्सर संविधान के 42वें संशोधन का उदाहरण दिया जाता है कि संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

और धर्मनिरपेक्ष शब्द गलत और राजनीति के कारण ठूंसा गया है जो मूल संविधान की प्रस्तावना में नहीं था। यही संशोधन नहीं, बल्कि लगभग सभी संशोधन सरकारें अपने राजनैतिक एजेंडा के अनुसार ही करती है। पर ऐसा बिल्कुल भी नहीं है कि समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष शब्द डाल देने मात्र से ही भारत समाजवादी हो गया और 42वें संशोधन के बाद ही हम धर्मनिरपेक्ष बने। ये दोनों शब्द अगर प्रस्तावना को संशोधित कर नहीं डाले गए होते तो भी देश का संविधान उतना ही धर्मनिरपेक्ष बना रहता जितना कि उस संशोधन के बाद भी बना हुआ है। समाजवादी तो यह संविधान न अपने अंगीकृत के समय हुआ, न 1976 के बयालीसवें संशोधन के बाद, और न अब है। धर्मनिरपेक्ष तो यह सदैव से ही रहा है। धर्मनिरपेक्षता या सर्वधर्मसमभाव या पंथनिरपेक्षता तो भारत की आत्मा में ही है। यह सनातन है और इसके सूत्र वैदिक काल से जुड़े हुए है। एक वैदिक ऋचा पढ़ें–

**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।**

(हम सब एक साथ चलें, एक साथ बोलें, हमारे मन एक हों)

भारतीय परम्परा के लंबे कालखंड में राजा का तो धर्म रहा है, पर राज्य का धर्म कभी नहीं रहा। इसीलिए मुस्लिम कालखंड में जैस ही किसी सम्राट ने कट्टर इस्लामी राज का एजेंडा लागू करके बढ़ाना चाहा, शक्तिशाली सम्राट के राज्य का पतन शुरू हो गया। इसे आप अकबर और औरंगजेब की धार्मिक नीति के अलग–अलग मानदंडों में स्पष्टतः देख सकते हैं। आजादी के लम्बे संघर्ष के दौरान चाहे वह 1857 का विप्लव हो, या गोखले, तिलक, गांधी के आंदोलन, या भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि क्रांतिकारी संगठनों की गतिविधियां या राजा महेंद्र प्रताप, एमएन राय, रास बिहारी बोस आदि के विदेशों से संचालित आन्दोलन या सुभाष बाबू का सैन्य हमला कर के भारत को आजाद कराने का अनोखा तरीका, सभी इस एक बात पर दृढ़ थे कि आजाद भारत का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष ही होगा, सिवाय वीडी सावरकर और एमए जिन्ना के, जो धर्म और राष्ट्र को पर्याय मान बैठे थे। आज जो तत्व धर्मनिरपेक्षता को एक बुराई के रूप में देख रहा है, उसकी भारत की आजादी के संघर्ष में कोई भूमिका ही नहीं थी, बल्कि वह सावरकर और जिन्ना के अधूरे एजेंडे को येन–केन प्रकारेण अब भी पूरा करना चाहता है। सबरीमाला मंदिर विवाद पर बीजेपी अध्यक्ष अमित शाह ने कन्नूर की रैली में जो बयान दिया, वह भले ही एक राजनैतिक बयान माना जाये, पर वह अदालत की सर्वोच्चता पर हमला है। सबरीमाला निर्णय, उपासना के अधिकार में लिंगभेद को मान्यता नहीं देता है। एक आयु विशेष की महिलाओं को, उनके उपासना के अधिकार, जो मौलिक अधिकारों की श्रेणी में आता है को मान्यता देता है, और उसे बहाल करता है। सुप्रीम कोर्ट महिलाओं को भगवान अयप्पा का दर्शन करने का कोई स्थायी आदेश नहीं देता है, बल्कि आयु और लिंग के आधार पर महिलाओं को उपासना के मौलिक अधिकार को संरक्षित करते हुए उनके अधिकारों से वंचित करने वाले नियम और प्राविधान को असंवैधानिक मानता है। ऐसा ही आदेश, अदालतें शनि शिंगणापुर और हाजी अली के मामले में दे चुकी। उन पर कोई राजनीतिक वितंडा भी नहीं खड़ा किया गया। 2006 में संघ ने, जो आज सबरीमाला प्रकरण में राजनैतिक संभावना खोज रहा है, स्वयं सुप्रीम कोर्ट में महिलाओं के दर्शन पूजन प्रतिबंध के खिलाफ याचिका दायर

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 02, July-Dec 2018

किया था। यहां न अयप्पा की शुचिता महत्वपूर्ण थी और न ही महिलाओं की उपासना का अधिकार बस राजनीतिक स्वार्थ ही सर्वोपरि है। संसदीय प्रणाली में लोग न प्रधानमंत्री चुनते हैं और न ही मुख्यमंत्री। हम सांसद चुनते है और विधायक। हमारे चुने बहुमत प्राप्त दल के दलों के समूह के सांसद या विधायक अपने नेता का चयन करते है। वही नेता मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री बनता है और अपना मंत्रिमंडल गठित करता है, जो संसद या विधानसभा के विश्वासपर्यन्त सरकार में रहता है। इधर कुछ सालों से, पहले पीएम या सीएम का नाम उछाला जाता है, तब सदन चुना जाता है। यह संसदीय लोकतंत्र में अध्यक्षात्मक प्रणाली के लोकतंत्र का तड़का आप कह सकते है। एक बार भाजपा के वरिष्ठ नेता आडवाणी जी ने अध्यक्षात्मक प्रणाली की बात उठायी थी। पर उस पर कोई बहुत बहस इसलिए नहीं हुई कि वह संविधान संशोधन से लागू करना संभव ही नहीं था, क्योंकि संसदीय प्रणाली संविधान के मूल ढांचे का एक बिन्दु है। उसी प्रकार आडवाणी जी ने द्विदलीय प्रणाली (जैसा कि अमेरिका में रिपब्लिकन और डेमोक्रेट दो दल हैं) के आधार पर संसदीय प्रणाली की भी चर्चा उठायी थी। उनके अनुसार केवल कांग्रेस और भाजपा ही मुख्य दल रहें और शेष अप्रासंगिक हो जाये। पर भारत की संसदीय प्रणाली में यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि यहां डीएमके, अन्नाडीएमके, बीजू जनता दल, तेलुगु देशम, टीएमसी और शिवसेना जैसी मजबूत और अपनी निजी आधारवाली क्षेत्रीय पार्टियां न केवल विद्यमान हैं बल्कि उन्होंने अपने–अपने राज्यों में इन दोनों बड़े दलों को अपनी–अपनी शर्तों पर बांध रखा है। यह भी विविधता का ही एक परिणाम है।

संविधान महज कानूनी दस्तावेज नहीं है। यह देश का एक आधार भी है। भारत का इतिहास ही विविधता में एकता और एकता में विविधता का रहा है। इतिहास की शुरूआत से आज तक जो अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है, उसमें तमाम सभ्यताएं, संस्कृतियों के गुण दोष मिले हुए हैं। सभ्यताओं के आपसी समागम ने एक ऐसी नायाब सभ्यता को जन्म दिया है जिसमें से एक ही धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि को खींच कर अलग नहीं किया जा सकता है। यह एक अनुपम तानाबाना है। यह अकेला ऐसा देश रहा है, जहां पर दुनियाभर के सभी धर्मो के लोग और विचारधाराएं आई और यहां सभी एक–दूसरे में समा गयी। हमारे संविधान ने भी उसी प्रकार से विश्व के लगभग सभी संविधानों के मुख्य गुणों को अपनाया है। लेकिन यह बात भी सच है कि कोई भी कानून और विधि–विधान सम्पूर्ण, त्रुटिरहित और असंशोधनीय नहीं होता और भारतीय संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। संविधान को कैसे जनोन्मुख और प्रगतिशील बनाये रखा जाए, यह हमारे चुने हुए जनप्रतिनिधियों की मेधा, इच्छाशक्ति, दूरदृष्टि, नेतृत्वक्षमता तथा स्टेट्समैनशिप पर निर्भर करता है।

**संदर्भः**

1. आचार्य डॉ0 दुर्गादास वसु, भारत का संविधान–एक परिचय, सातवां संस्करण।
2. डॉ0 जे0सी0 जौहरी, भारतीय शासन एवं राजनीति
3. डॉ0 अरूण कुमार, आधुनिक सरकारें।
4. आर0सी0 अग्रवाल, कॉन्स्टीट्यूशनल डेवलेपमेंट एण्ड नेशनल डेवलेपमेंट।